* वेद के दार्शनिक विचार

- वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु से बना है जिसका अर्थ है ज्ञान। यहाँ ज्ञान का आशय साधारण अर्थों में ज्ञान से नहीं बल्कि एक वास्तविक, शुद्ध मौलिक एवं नित्य ज्ञान से है। भारतीय दर्शन की ऐसी मान्यता रही है कि एक मौलिक, नित्य प्रकार का ज्ञान है जो अनादि, शाश्वत एवं निरपेक्ष है। परंपरानुसार इस ज्ञान के भंडार को 'वेद' कहा जाता है।

- वेद के रचनाकार को लेकर भारतीय दर्शन में मतैक्य नहीं है। आस्तिक दर्शन जो वेद की प्रमाणिकता को स्वीकार नहीं करता वे मानते हैं कि वेद की रचना धूर्त ब्राह्मणों द्वारा आम लोगों को भ्रमित कर स्वयं की जीविका निर्वहन के लिए रचा गया है। आस्तिक दर्शन वेद की प्रमाणिकता को स्वीकार करता है परंतु इसके रचियता को लेकर एकमत नहीं है। लेकिन इतना तो सभी आस्तिक दर्शन स्वीकार करते हैं कि वेद मानव रचित नहीं है। न्याय-वैशेषिक इसे ईश्वर रचित मानता है तो अन्य आस्तिक दर्शन मानव अथवा ईश्वर रचित नहीं मानते। इनके अनुसार वेद शाश्वत है, इसके मंत्र किसी विशेष स्तर पर ऋषि द्वारा साक्षात्कार किया गया है।

- वेद के अविष्कारक ऋषि है। ऋषि वे है जिनकी चेतना (पूजा) सत्य में स्थित रहते है जिसकी चेतना निरंतर सत्य का साक्षात्कार करे। ऋषि की चेतना शाश्वत, दिव्य और अलौकिक अनुभूति को उपलब्ध होते है फलतः मंत्र के रूप में सत्य का अविच्छिन्न प्रवाह होता ऋषि से स्वाभाविक रूप में होता रहता है। ऋषि के संबंध में कहा जाता है ऋषि तु मन्त्र द्रष्टारः न तु कर्तारः अर्थात ऋषि तो मंत्र के देखने वाला है न कि बनाने वाला। मंत्र को बनाने वाला केवल एक परमात्मा है।

- वेद के रचनाकार की संख्या और समय सीमा को लेकर भी भारतीय दर्शन में स्पष्टता नहीं है। वस्तुतः जीवन और जगत की अनबूझ पहेली और रहस्यों को समझने के प्रयास में ऋषि अपने विलक्षण एवं रहस्यात्मक अनुभूति में मंत्रों का साक्षात्कार किए और ये साक्षात्कार एक ऋषि द्वारा न होकर अनेक ऋषियों के समन्वित प्रयास का फल है अतः

Scanned with CamScanner

वैदिक मंत्रों के आविष्कारक अनेक ऋषि हैं। साथ ही यह किसी सीमित समय में अविष्कृत नहीं हुए अपितु गहन तपस्या और साधना के द्वारा निरंतर गवेषणा का परिणाम है। फलतः यह स्पष्ट है कि वेद की रचना एक लम्बे समय में हुई।

- वैदिक ऋषि मंत्रों के रचियता नहीं अपितु आविष्कारक थे। ऋषि जीवन और जगत के रहस्यों को समझने के लिए अन्तर्यात्रा पर गए। गहन आध्यात्मिक अवस्था में सत्य का साक्षात्कार मंत्र के रूप में उन्होने किया। इस रूप में मंत्र ऋषि के विचार का फल नहीं है, इसे वे अपने बुद्धि से रचना नहीं किए। पहले से विद्यमान भावराशी के वे द्रष्टा मात्र है – वे भाव अनादि काल से ही इस संसार में विद्यमान थे ऋषि उसका आविष्कार मात्र किए। इस रूप में ऋषि आध्यात्मिक आविष्कारक थे।

- "वैदिक ज्ञान में संप्रेषणीयता होती है, इसलिए इसरों में इसे संप्रेषित भी किया जा सकता है। प्रारंभ में जब लेखन की प्रणाली विकसित नहीं हुई थी तो ऋषियों ने इसे मौखिक रूप से सम्प्रेषित किया और परंपरा ने इसे सुनकर प्राप्त किया। फलस्वरूप ऐसी ज्ञान संघति का एक नाम श्रुति भी हुआ। इसप्रकार के ज्ञान संघति को वेद कहा गया है। यह संघति काफी विशाल थी लेकिन आज हमें यह मात्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद - इन चार संहिता में अत्यधिक सीमित रूप में उपलब्ध है। सीमितता का कारण यह है कि सम्प्रेषण के अभाव में ये लुप्त हो गए। सम्प्रेषण के अभाव का आशय यह है कि वैदिक ज्ञान के अधिकारी पुरुष अयोग्य एवं अपात्र को यह ज्ञान प्रदान नहीं करते। अपात्र के हाथ में यह ज्ञान जाने से इसका अनुचित प्रयोग और गलत व्याख्या की आशंका बनी रहती है ऐसे व्यक्ति से मानव जाति को अनिष्ट होने की संभावना बनी रहती है। फलतः ऋषिजन साधक की गहन परीक्षा लेते और इन परखे हुए व्यक्ति को ही यह विद्या प्रदान करते। कालक्रम में योग्य पात्र नहीं मिलने से तथा लेखन की परम्परा नहीं होने से अधिकारी पुरुष (ऋषि) के साथ ही इस प्रकार

Scanned with CamScanner

के ज्ञान का विलोप हो गया। इस रूप में वैदिक वाङ्मय का एक विपुल भंडार से मानव जाति वंचित रह गया। जो अवशिष्ट के रूप में बचे हैं वह चार संहिता के रूप में वर्तमान में उपलब्ध है।

- सम्मिलित रूप से इन चारों वेद में निहित मौलिक ज्ञान हमारे सारे लौकिक ज्ञान-विज्ञान के मूल में है। इसके अतिक्रांतक (अतिक्रामक) स्वरूप का देश-काल-परिस्थिति के अनुसार व्याख्याएँ होती रहती है और यह अपरिहार्य भी है। इस व्याख्या को स्मृति कही जाती है स्मृति परिवर्तनशील हो सकती है लेकिन श्रुति अथवा वेद नहीं।

- भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में विकसित समस्त दार्शनिक विचारों का बीज वेद में सन्निहित है। लगभग समस्त परवर्ती दर्शन वैदिक सिद्धांतों के खण्डन, मण्डन या विश्लेषण से विकसित हुआ है इस रूप में वेद में दार्शनिक विचारधारा प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत इस प्रकार है —

1. मानवीय जीवन का उद्देश्य — तात्कालिक समस्या का सम्यक् समाधान ही मानव का उद्देश्य रहा है। प्रारंभिक मानव के सामने अनिष्ट (विविध दुःख) सबसे प्रमुख समस्या थी और इससे छुटकारा ही उनका प्रमुख उद्देश्य था। वे एक दुःख रहित पारलौकिक जीवन की कल्पना किए - स्वर्ग। स्वर्ग वैदिक मानव के लिए सम्पूर्ण सुख को प्रदान करने वाला अलौकिक जगत है। जिसको प्राप्त करने के लिए अनेक विशिष्ट पद्धतियों, प्रक्रियाओं और कर्म काण्डों का विधान किया गया। ध्यातव्य है कि स्वर्ग में उन सभी इन्द्रिय सुख, भोग-विलास और एश्वर्य की कल्पना किया गया जो इस लोक में वैदिक मानव के पास उपलब्ध नहीं था। जब उसे लगा कि मृत्यु के बाद भी जीवन की संभावना है तो वे यज्ञ-याग आदि का सृजन करने लगे। मानवीय मन का यह स्वभाव है कि जिसे वह भौगोलिक, पारिस्थितिक या क्षमता के अभाव में जिस-जिस कामना/वासना

Scanned with CamScanner

की आपूर्ति इस लोक में नहीं कर पाता. उस इच्छाओं की पूर्ति धर्मशास्त्रों में पारलौकिक जीवन के कल्पना द्वारा गढ़ लेता है। और उसकी प्राप्ति को जीवन का चरम उद्देश्य मानता है।

2. यज्ञ - स्वर्ग की प्राप्ति एवं अनिष्ट (दुःखों) के निवारण हेतु वैदिक मानव द्वारा यज्ञ का सृजन किया गया। यज्ञ ईश्वर से सम्पर्क का एक माध्यम है। इसमें ईश्वर से अभीष्ट की प्राप्ति हेतु प्रार्थना और समर्पण किया जाता है। प्रार्थना के लिए वैदिक ऋचाएँ और समर्पण के लिए यज्ञ के विधि का अविष्कार किया गया। यज्ञ में वेदी बनाकर, अग्नि प्रज्वालित कर भोज्य सामग्री इस भावना से अर्पित किया जाता है कि अग्नि देवताओं का मुख है जिससे होकर यह सामग्री देवताओं तक पहुँचेगी। स्पष्टतः यज्ञ क्रिया में ऋत्विज, हव्य के उपभोक्ता, यजमान आदि होते है। यज्ञ का हव्य, हव्य के उपभोक्ता देवता को लाभ पहुँचाते है जो प्रसन्न होकर यज्ञ कर्ता को फल प्रदान करता है। यजुर्वेद में यज्ञ की विधियों का वर्णन है।

3. ऋत्विज - चारों वेदों का संबंध यज्ञ से है। यज्ञों के विधिपूर्वक अनुष्ठान के लिए चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है।

(क) होता - यह ऋग्वेद का ऋत्विज है। जो स्तुति मन्त्रों के उच्चारण से देवताओं का आह्वान करता है।

(ख) अध्वर्यु - यह यजुर्वेद का ऋत्विज है। जो यज्ञ के विभिन्न अंगो का विधिवत् सम्पादन करता है।

(ग) उद्गाथा - यह सामवेद का ऋत्विज है जो मधुर स्वर में जाप करता है।

(घ) ब्रह्मा - यह यज्ञ की अध्यक्षता करता है। यह सम्पूर्ण यज्ञ का विधिवत् निरीक्षण करता है जिससे किसी भी प्रकार की त्रुटि न हो।

Scanned with CamScanner

4. ऋत - ऋत वेद के महत्वपूर्ण दार्शनिक विचार है। ऋत का शाब्दिक अर्थ है - उचित या सही अथवा नैतिक सद्मार्ग। ऋत जगत की शाश्वत, अलंघनीय, प्राकृतिक व नैतिक व्यवस्था का नाम है, जिसके संचालक एवं संरक्षक वरुण है। वरुण को गोपा ऋतस्य कहा जाता है। ऋत से सम्पूर्ण ब्रह्मांड संचालित होता है। यह व्यवस्था का नियम है। सभी देवी-देवता ऋत को स्वीकारते है, तदनुकूल आचरण करते है। इसलिए देवताओं को ऋतजात कहा जाता है। ऋत के तीन आयाम या क्षेत्र है - 1. प्राकृतिक नियम 2. नैतिक नियम 3. कर्मकाण्डीय नियम।

5. कर्म नियम - वेद के दार्शनिक विचार ऋत के नैतिक आयाम में ही कर्म नियम का बीज छुपा हुआ है। समस्त भारतीय आस्तिक एवं नास्तिक दर्शन इसकी सत्ता को स्वीकार करते हैं (अपवाद: चार्वाक) नैतिक आयाम के अन्तर्गत ऋत का तात्पर्य सदाचार के मार्ग को बताना है अर्थात नैतिक व्यवस्था से है। कर्म नियम इसी बात का विस्तार है। कर्म नियम के अनुसार अच्छे कर्मों का अच्छा व बुरे कर्मों का बुरा फल अवश्य मिलता है। कर्म नियम के अनुसार किए गए कर्म का फल नष्ट नहीं होता तथा बिना किए गए कर्म का फल प्राप्त नहीं होता। कर्म नियम को मानने के लिए 'आत्मा की अमरता' और 'पुनर्जन्म' के सिद्धांत को स्वीकार करना पड़ता है।

6. ऋण - वैदिक परंपरा के अनुसार मनुष्य जन्म से ही तीन प्रकार के ऋण लेकर आता है जिससे उऋण होना उसका कर्तव्य है। इन सभी कर्तव्यों का निर्वहन व्यक्ति को गृहस्थ एवं ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए करना चाहिए। ~~ऋण~~ त्रिऋण है - पितृऋण, देव ऋण, ऋषि ऋण।

(क) पितृऋण - जन्म एवं प्रारंभिक लालन पालन के लिए पिता का आभार इससे उऋण होने के लिए पुत्रोत्पत्ति एवं श्राद्धकर्म करना चाहिए।

(ख) देवऋण - जीवन के विकास के लिए प्रकृति के विभिन्न शक्तियों (देवताओं) का आभार। इससे उऋण होने के लिए यज्ञ एवं प्रार्थना करना चाहिए।

(ग) ऋषिऋण - वैदिक विरासत जिससे हमारी बौद्धिक एवं चारित्रिक विकास होती है, इसके लिए ऋषियों का आभार। इससे उऋण होने के लिए वैदिक ज्ञान ग्रहण कर अगली पीढ़ी में सम्प्रेषित करना चाहिए।

- ज्ञातव्य है कि ऋण लेने के आय की चर्चा तैत्तरीय संहिता में बताया गया है।

Scanned with CamScanner

7. देवता - वेदों में प्राकृतिक शक्तियों अथवा अवयवों को देवता से संबंधित किया गया है। ये देवता विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के संचालक के रूप में हैं। देवता का अर्थ है- जो देता है, प्राकृतिक शक्तियाँ हमें कुछ न कुछ देती हैं, इसलिए वे देवता हैं। जैसे सूर्य हमें प्रकाश देता है। देवता दिव धातु से बना है जिसका अर्थ है चमकना अथवा प्रकाशित होना। इस प्रकार जो प्रकाशवान है वह देवता है। देवता अपने प्रकाश या गरिमा से चमकते हैं। स्तुतियाँ व प्रार्थनाएँ जिसके प्रति समर्पित हैं, वे भी देवता हैं।
वैदिक देवता - वरुण, मित्र, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, विष्णु, सोम आदि।
वैदिक देवियाँ - उषा, पृथ्वी, सरस्वती, अदिति आदि।

8. धर्म एवं उपासना - वैदिक धर्म का स्वरूप उपासनामूलक था। वेद के दार्शनिक और धार्मिक विचार अप्रासंगिक है। वैदिक ऋषि प्राकृतिक शक्तियों में देवभाव का आरोपण कर देवता के रूप में स्वीकार किया तथा अभीष्ट की प्राप्ति एवं अनिष्ट का निराकरण हेतु इन शक्तियों की उपासना करते थे। वैदिक धर्म का विकास कई चरणों में बाँटकर देखा जा सकता है, यह विभाजन देवताओं के स्वरूप को लेकर हुआ है।
बहुदेववाद → एकाधिदेववाद → एकेश्वरवाद → एकतत्ववाद
वैदिक धर्म का प्रारंभ अनेक देवताओं के उपासना से हुआ परंतु मानवीय मन इसे स्वीकार न कर सका। धार्मिक चेतना एक ही ईश्वर को सर्वश्रेष्ठ आराध्य मानने के लिए बाध्य करती है। इस प्रकार एकेश्वरवाद धर्म के विकास का स्वाभाविक निष्कर्ष है।

9. विश्वात्मा - एकेश्वरवाद में आत्म और अनात्म का द्वैत विद्यमान होने के कारण यह मानवीय मन को अंतिम रूप से संतुष्ट न कर सका। देवताओं की संख्या घटकर एक तो हो गई परंतु विश्व के स्रष्टा, नियंता पृथक ही रहा। अतः विश्वात्मा की धारणा का विकास हुआ जो सम्पूर्ण सत्ता का केवल एक ही मूल स्रोत है। इसे एकतत्ववाद एवं कालांतर में अद्वैतवाद कहा गया। इस अवधारणा के अनुसार जीवन

Scanned with CamScanner

तथा जगत का मूल तत्व एक है। एक ही मौलिक तत्व विश्व के अनेकों भौतिक तथा मानसिक पदार्थों के रूप में प्रकट होता है। समस्त विविधता या तो उस एक तत्व की ही अभिव्यक्ति है या प्रतीति। इसलिए एकत्ववादी यह मानते हैं कि विविधता के आधार में एक मौलिक एकता है। आत्म-अनात्म, ज्ञाता ज्ञेय का भेद सही नहीं है। कहीं पर भी द्वैत का वास्तविक अस्तित्व नहीं है। अदिति सूक्त, पुरुष सूक्त तथा नासदीय सूक्त में विश्वात्मा के स्वरूप को दर्शाया गया है।

Scanned with CamScanner